GEO IAS
It's about quality

THE HINDU
INDIA'S NATIONAL NEWSPAPER SINCE 1878

Daily News Analysis

The Hindu Important News Articles & Editorial For UPSC CSE

Tuesday, 03 Dec , 2024

Edition: International Table of Contents

Page 05 **Syllabus : प्रारंभिक तथ्य**	मणिपुर में अफीम की खेती में 32.13% की गिरावट दर्ज की गई : MARSAC
Page 06 **Syllabus : GS : 2 : शासन**	ऑक्सफोर्ड अध्ययन ने परियोजनाओं को तेजी से आगे बढ़ाने के लिए प्रगति प्रणाली की सराहना की
Page 07 **Syllabus : प्रारंभिक तथ्य**	न्यूजीलैंड के वैज्ञानिक दुर्लभतम व्हेल की पहेली को सुलझाने के लिए एकत्रित हुए
Page 10 **Syllabus : GS 2 : शासन**	भारत की 'एक राष्ट्र, एक सदस्यता' योजना
Page 11 **Syllabus : GS 3 : अर्थव्यवस्था**	प्रूधों का पारस्परिकता का सिद्धांत: पूंजीवाद और अधिनायकवाद की आलोचना
Page 08 : संपादकीय विश्लेषण: **Syllabus : GS 2 : सामाजिक न्याय – कमजोर वर्ग**	विकलांग नागरिक, अपने अधिकारों को वास्तविक बना रहे हैं

It's about quality

Page 05 : Prelims Fact

मणिपुर में अफीम की खेती में 2023-24 में 32.13% की कमी आई है, फिर भी यह राज्य के 16 जिलों में से 12 में व्यापक रूप से फैली हुई है।

- यह कमी राज्य के चल रहे "ड्रग्स पर युद्ध" के हिस्से के रूप में अवैध अफीम के खेतों को नष्ट करने के लिए कानून प्रवर्तन द्वारा किए गए ठोस प्रयासों के बाद आई है। खेती ड्रग तस्करी और चल रहे जातीय संघर्षों से जुड़ी हुई है।

अफीम के पौधे के बारे में अधिक जानकारी:

- अफीम का पौधा (पापावर सोम्निफेरम) भूमध्यसागरीय क्षेत्र का मूल निवासी है।
- इसकी खेती इसके बीजों, तेल और अफीम के लिए की जाती है, जिसमें मॉर्फिन और कोडीन जैसे एल्कलॉइड होते हैं।
- अफीम के बीजों का इस्तेमाल आमतौर पर बेकिंग और खाना पकाने में किया जाता है।
- इस पौधे से निकाली गई अफीम हेरोइन जैसे नशीले पदार्थों का प्राथमिक स्रोत है।
- अफीम के पौधे आमतौर पर 3-4 फीट लंबे होते हैं और बड़े, रंगीन फूल पैदा करते हैं।
- अफीम पैदा करने वाली किस्मों को अक्सर दुनिया भर के कई क्षेत्रों में अवैध रूप से उगाया जाता है।
- अफ़गानिस्तान, म्यांमार और मणिपुर सहित भारत के कुछ हिस्सों में अफीम की खेती एक महत्वपूर्ण मुद्दा है।
- अफीम की खेती अवैध दवा उत्पादन में योगदान देती है, जिससे वैश्विक नशीली दवाओं के व्यापार और लत की समस्याएँ बढ़ती हैं।
- औषधीय उद्देश्यों के लिए कानूनी खेती सख्त नियमों के तहत होती है, जैसे कि दवा उत्पादन में।

Manipur records dip in poppy cultivation by 32.13%: MARSAC

The Hindu Bureau
GUWAHATI

Poppy cultivation in Manipur decreased by 32.13% during 2023-24 from the previous fiscal but the opium-yielding plant continues to be grown extensively in 12 of the State's 16 districts, a report prepared by Manipur Remote Sensing Applications Centre (MARSAC) said.

Drug smuggling from adjoining Myanmar and large-scale poppy cultivation by clearing jungles on the hills are said to be among the factors behind the ongoing ethnic clashes between the Meitei and Kuki-Zo people in Manipur since May 3, 2023.

According to the MARSAC report, the Manipur police and other law enforcement agencies destroyed illegal poppy cultivation on 19,135.6 acres across 12 districts between 2017 and January 2024. The Kangpokpi district topped the list with 4,454.4 acres of poppy plantations destroyed followed by Ukhrul district with 3,348 acres, and Churachandpur with 2,713.8 acres.

The other districts where illicit poppy fields were destroyed during the seven years include 2,575 acres in Tengnoupal, 1,982.5 acres in Chandel, 1,682 acres in Senapati, and 737.9 acres in Imphal East.

The operations against poppy cultivation were carried out mostly in 2020-21 and 2022-23.

The operations against poppy cultivation were carried out mostly in 2020-21 and 2022-23, during which the flowering plants were destroyed on 8,957.1 acres.

The report said the area under poppy cultivation in nine districts declined from 28,598.91 acres in 2021-22 to 11,288.1 acres in 2023-24.

"The data show that CM N. Biren Singh's war on drugs has had a major impact," a Manipur government official said, declining to be quoted.

Page 06: GS : 2 : Governance

ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के सैद बिजनेस स्कूल द्वारा किए गए एक अध्ययन में प्रमुख परियोजनाओं में तेजी लाने और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए भारत की प्रगति अवसंरचना निगरानी प्रणाली की प्रशंसा की गई है।

- प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा शुरू की गई इस प्रणाली ने देश भर में अवसंरचना विकास, जवाबदेही और स्थिरता में उल्लेखनीय सुधार किया है।

प्रगति प्रणाली:

- प्रगति का अर्थ है सक्रिय शासन और परियोजनाओं का समय पर कार्यान्वयन।
- प्रधानमंत्री द्वारा पूरे भारत में अवसंरचना परियोजनाओं की निगरानी के लिए इसे शुरू किया गया था।
- इस प्रणाली का उद्देश्य नौकरशाही की जड़ता को दूर करना और दक्षता, जवाबदेही और समय पर पूरा होने को बढ़ावा देना है।
- प्रगति केंद्र और राज्य सरकारों के हितधारकों को एक ही मंच पर एकीकृत करती है।
- यह भूमि अधिग्रहण, अंतर-मंत्रालयी समन्वय और परियोजना में देरी जैसी चुनौतियों के समाधान पर केंद्रित है।
- इस प्रणाली ने 205 बिलियन डॉलर की 340 परियोजनाओं को गति दी है, जो आर्थिक परिवर्तन में योगदान दे रही है।
- यह अवसंरचना पर खर्च किए गए प्रत्येक रुपये के लिए जीडीपी को ₹2.5 से ₹3.5 तक बढ़ाती है।
- प्रगति विकास परियोजनाओं में हरित प्रौद्योगिकियों और स्थिरता के उपयोग को बढ़ावा देती है।
- इसने सड़क, रेलवे और बिजली जैसी बुनियादी ढांचा सेवाओं में तेजी लाकर जीवन की गुणवत्ता में सुधार किया है।

Oxford study lauds PRAGATI system for fast-tracking projects

The Hindu Bureau
NEW DELHI

A study by Oxford University's Saïd Business School has lauded Prime Minister Narendra Modi's PRAGATI infrastructure monitoring system for accelerating 340 projects worth $205 billion across the country and bringing about economic transformation.

The study titled "From Gridlock to Growth: How Leadership Enables India's PRAGATI Ecosystem to Power Progress" was authored by Soumitra Dutta, dean at the SBS, and co-authored by associate fellow Mukul Pandya. It was presented at a symposium hosted by the Indian Institute of Management, Bangalore, on Monday.

The study looked at factors including close monitoring of infrastructure projects and their completion since 2015 through the PRAGATI system, an acronym for Pro-Active Governance and Timely Implementation of projects.

"The platform symbolises India's commitment to overcoming bureaucratic inertia and fostering a Team India mindset and culture of accountability and efficiency," says the report. "PRAGATI has brought together diverse stakeholders from Central and State governments onto a single platform and this collaborative approach has been instrumental in addressing some of the complex challenges in infrastructure development, from land acquisition to inter-ministerial coordination," the report says.

The report says that PRAGATI system symbolises India's commitment to overcoming bureaucratic inertia

The report adds that the economic impact of PRAGATI is evident. According to studies by the Reserve Bank of India and the National Institute of Public Finance and Policy, for every rupee spent on infrastructure, India sees a gain of ₹2.5 to ₹3.5 in GDP. "By fast-tracking projects that provide services like roads, railways, water, and electricity, PRAGATI has improved the quality of life for millions of Indians. It has incorporated sustainability into its core operations, facilitated faster environmental clearances and promoted the use of green technologies. This holistic approach ensures that India's development is both inclusive and sustainable," the report says.

Page 07 : Prelims Fact

न्यूजीलैंड के एक समुद्र तट पर एक दुर्लभ कुदाल-दांतेदार व्हेल की खोज की गई, जो अब तक दर्ज की गई केवल सात व्हेल में से एक है, जो वैज्ञानिक अध्ययन के लिए एक अनूठा अवसर प्रदान करती है।

- अपनी तरह का यह पहला विच्छेदन, प्रजातियों के जीव विज्ञान और व्यवहार के रहस्यों को उजागर करने का लक्ष्य रखता है।

समाचार का विश्लेषण:

- कुदाल-दांतेदार व्हेल दुनिया की सबसे दुर्लभ व्हेल है, जिसके केवल सात नमूने दर्ज किए गए हैं और समुद्र में कोई भी जीवित अवलोकन नहीं किया गया है।
- जुलाई में न्यूजीलैंड के एक समुद्र तट पर लगभग पूरी तरह से संरक्षित कुदाल-दांतेदार व्हेल मृत पाई गई, जो एक दुर्लभ शोध अवसर प्रदान करती है।
- यह प्रजाति का पहला विच्छेदन है, जिसका उद्देश्य इसकी शारीरिक रचना, भोजन प्रणाली, ध्वनि उत्पादन और संभावित परजीवियों का पता लगाना है।
- प्रजातियों का निवास स्थान, व्यवहार और जैविक प्रक्रियाएँ काफी हद तक अज्ञात हैं।
- पहले के नमूनों की पहचान 2002 में डीएनए अनुक्रमण के माध्यम से की गई थी, जिससे उन्हें चोंच वाली व्हेल की एक अलग प्रजाति के रूप में पुष्टि हुई।
- पिछली खोजों में न्यूजीलैंड (1872 और 1950 के दशक) और चिली (1986) में कंकाल के अवशेष शामिल हैं, जिनमें से 2010 में अक्षुण्ण नमूने पाए गए।
- विच्छेदन न्यूजीलैंड के स्वदेशी माओरी के साथ साझेदारी में सांस्कृतिक संवेदनशीलता के साथ किया जाता है, जो व्हेल को पैतृक खजाने के रूप में मानते हैं।
- व्हेल-स्ट्रैंडिंग हॉटस्पॉट के रूप में न्यूजीलैंड के इतिहास में 1840 से 5,000 से अधिक प्रकरण दर्ज किए गए हैं।

A photo taken on July 5 by the New Zealand Department of Conservation shows rangers beside what appears to be the carcass of a rare spade-toothed whale after it was discovered washed ashore on a beach near Taieri Mouth, New Zealand. AFP

Scientists in NZ gather to decode puzzle of rarest whale

Associated Press

It is the world's rarest whale, with only seven of its kind ever spotted. Almost nothing is known about the enigmatic species. But on Monday a small group of scientists and cultural experts in New Zealand clustered around a near-perfectly preserved spade-toothed whale hoping to decode decades of mystery.

"I can't tell you how extraordinary it is," said Anton van Helden, senior marine science adviser for New Zealand's conservation agency, who gave the spade-toothed whale its name to distinguish it from other beaked species.

Van Helden has studied beaked whales for 35 years, but Monday was the first time he has participated in a dissection of the spade-toothed variety. In fact, the careful study of the creature, which washed up dead on a New Zealand beach in July, is the first ever to take place.

None has ever been seen alive at sea.

The list of what scientists don't know about spade-toothed whales is longer than what they do know. They don't know where in the ocean the whales live, why they've never been spotted in the wild, or what their brains look like. All beaked whales have different stomach systems, and researchers don't know how the spade-toothed kind processes its food.

Over the next week, researchers studying the 5-metre male at a research centre near Dunedin hope to find out.

"There may be parasites completely new to science that just live in this whale," said van Helden, who thrilled at the chance of learning how the species produces sound and what it eats. "Who knows what we'll discover?" Only six other spade-toothed whales have ever been found, but all those discovered intact were buried before DNA testing could verify their identification.

The dissection will be slower than usual, because it is being undertaken in partnership with the Maori, for whom whales are a precious treasure, and the creature will be treated with the reverence afforded to an ancestor

New Zealand is a whale-stranding hotspot, with more than 5,000 episodes recorded since 1840, according to the Department of Conservation. The first spade-toothed whale bones were found in 1872 on New Zealand's Pitt Island. Another discovery was made at an offshore island in the 1950s, and the bones of a third were found on Chile's Robinson Crusoe Island in 1986.

DNA sequencing in 2002 proved that all three specimens were of the same species and that it was distinct from other beaked whales. But researchers studying the mammal couldn't confirm whether the species was extinct until 2010, when two whole spade-toothed whales, both dead, washed up on a New Zealand beach.

On Monday, the seventh of its kind, surrounded by white-aproned scientists who were measuring and photographing, appeared relatively unblemished, giving no clue about its death. Researchers pointed out marks from cookiecutter sharks — normal, they said, and not the cause.

The dissection will be quiet, methodical, and slower than usual, because it is being undertaken in partnership with Maori, New Zealand's Indigenous people. To Maori, whales are a precious treasure, and the creature will

Page 10 : GS 2 : Governance

केंद्रीय मंत्रिमंडल ने हाल ही में 'एक राष्ट्र, एक सदस्यता' (ONOS) योजना को मंजूरी दी है, जिसका उद्देश्य सार्वजनिक संस्थानों में विद्वानों की पत्रिकाओं तक समान पहुंच प्रदान करना है।

India's 'One Nation, One Subscription' plan

Is the global research ecosystem increasingly embracing open access publishing away from subscription-based models? What is an article processing charge? Do researchers own the copyrights of their work after it has been published in a journal? What are open access repositories?

EXPLAINER

Moumita Koley

The story so far:

The Union Cabinet approved the Indian government's 'One Nation, One Subscription' (ONOS) scheme on November 25. The ONOS promises to provide equitable access to scholarly journals in all public institutions.

What does the ONOS entail?

First mooted around 2018-2019, the scheme's ambitious rollout comes with a substantial financial outlay of ₹6,000 crore over three years (2025-2027), to be paid to 30 major international journal publishers. For perspective, the Indian public and its academic institutions collectively spend around ₹1,500 crore every year on journal subscriptions. This is a rough estimate and probably includes the cost of subscription to databases as well; if so, the current total public expense to access journals will be well lower than ₹2,000 crore per year.

At the outset, ONOS's promise to offer equitable access to research articles, irrespective of an institution's prestige or financial capacity, which seems like a step towards democratising knowledge. But a closer examination reveals complexities that call for deeper analysis.

Is ONOS swimming against the tide?

The central question is: why is India investing heavily in a subscription-based model at a time when the global research ecosystem is increasingly embracing Open-Access (OA) publishing?

In the subscription model, a journal receives manuscripts from scientists (about their studies, etc.), evaluates them through peer review, and accepts (or rejects) them. Once a paper is accepted, the journal publishes it and makes money by charging people and institutions to access it. OA refers to papers that are published to be freely accessible. There are different kinds of OA. A common type is called gold OA, where the journal makes money by charging authors an article processing charge (APC) to publish papers in the journal. The APC for a single paper has been known to be thousands of dollars. For example, *Nature Communications* charges $6,790 per paper. Scientific knowledge, as a public good, should ideally be accessible to all, especially when taxpayers fund it. The COVID-19 pandemic showed why it is important to have immediate and unrestricted access to research, not just for scientists but also for the people at large: to combat misinformation and drive informed decision-making.

Today, more than 53% of all scientific papers worldwide are open access in some way, according to data from Clarivate's Web Of Science platform. This is a significant increase since 2018-2019, when ONOS was first conceptualised, and raises questions about ONOS's financial prudence. If more than half of the research articles are freely accessible, should India not be paying significantly less for subscriptions than before? ONOS risks draining taxpayer money to achieve an obsolete good.

Some international developments further complicate the picture. The U.S. Office of Science and Technology Policy has mandated that from 2026, all publicly funded research articles must be freely accessible without any delay. Similarly, Horizon Europe, the European Union's flagship funding program, requires peer-reviewed publications resulting from its funding be made freely available online. Considering these moves, in another year a significant fraction of research produced worldwide is likely to be freely accessible to everyone.

This timeline raises questions about ONOS's relevance beyond 2025.

What are the challenges of commercial publishing?

The global scholarly publishing system is dominated by a handful of commercial publishers based in Western countries, and they have long been criticised for excessive subscription fees, inefficiencies resulting in delays in publishing articles, and resistance to innovation.

The scholarly publishing industry is built on publicly funded research. Researchers generate new knowledge, write their findings, and perform peer reviews – all without direct compensation from publishers. In the subscription model, these publishers charge exorbitant fees for access, creating a situation where public institutions must pay to access work they have already supported. Publisher profit margins often exceed 30%, revealing the exploitation implicit to scholarly publishing systems.

Even the shift towards OA has been dominated by gold OA and its high APCs. Many prominent journals in a few disciplines, such as biological science, have transitioned to become fully OA. Indian researchers wishing to publish in these journals will have to pay APCs since the allocation for ONOS doesn't provide for this fee. Moreover, most subscription journals are now hybrid, so researchers – especially from the U.S. and the EU – are paying APCs to publish their articles to be OA in these journals.

India, with its immense pool of talent and resources, has the potential to reimagine this publishing ecosystem, fostering innovation in the workflow. Especially when most of the backend work in the publishing industry is outsourced to India, the infrastructure and knowhow definitely exist in the national ecosystem. But ONOS risks entrenching the status quo by reinforcing reliance on Western publishers.

What about copyright transfers?

Another significant issue with the subscription model is the need for researchers to surrender their copyrights to publishers. This allows publishers to use their work without considering the authors' rights or consent. A recent controversy involving *Taylor & Francis* (T&F) and Microsoft exemplifies the extent of this problem. In early 2024, T&F had signed a deal allowing Microsoft to use its journal content to train artificial intelligence (AI) models. Since authors don't hold the copyright of their work, there is no need for permission from authors – yet they objected because the use of their work to train AI models was going unpaid. There is an urgent need for policies that protect researchers' intellectual property.

There are ways to address copyright violation concerns. Harvard University pioneered a policy in 2008 that granted the university a non-exclusive, irrevocable right to disseminate the work of university researchers. Researchers retained the right to self-archive their work in OA repositories. Many institutes like the Massachusetts Institute of Technology and the University of Oxford followed suit. ONOS has the opportunity to emulate these models by incorporating a nationwide 'rights retention' policy, enabling Indian researchers to deposit their work in institutional repositories immediately after publication – a practice known as green open access.

India's own 2014 Open Access Policy requires researchers funded by the Departments of Biotechnology and of Science & Technology to make their work openly accessible – but its implementation has been lacklustre. The ONOS could have been the ideal platform to enforce this mandate, ensuring Indian research becomes globally accessible through open repositories immediately after publication.

Is digital content preserved?

Another issue is the long-term preservation of research articles, now that almost all major journals are published online. A recent study in the *Journal of Librarianship and Scholarly Communication* reported that 28% of articles with Data Object Identifiers (DOIs) – unique IDs to identify published papers – aren't preserved, exposing gaps in current practices. The discontinuation of *Heterocycles*, a journal published by the Japan Institute of Heterocyclic Chemistry, in 2023 left around 17,000 articles inaccessible, highlighting the risks of relying solely on publishers to preserve scientific knowledge. In this case access was eventually restored, but the delay illustrates the need for solutions like self-archiving through green OA.

Is self-reliance possible in publishing?

In an era where self-reliance is a national priority, it has been overlooked in scholarly publishing. While Indian researchers may continue publishing in journals like *Nature*, *Science*, *Cell*, etc., significant potential exists to elevate Indian journals to world-class standards.

India has the resources and expertise to build a robust indigenous publishing ecosystem. Preprinting and data sharing should also be considered as an integral part of the publishing workflow (preprinting refers to a paper being published online before it has been peer-reviewed). By investing in infrastructure, editorial processes, and global visibility for Indian journals, the country can reduce its dependence on Western publishers and attract high-quality submissions from across the world. This is not just about the money being drained from our ecosystem: it's also about establishing India as a leader in science and innovation.

What could ONOS have done?

ONOS can be lauded for its ambition to democratise research access, but it should have addressed deeper structural issues plaguing scholarly publishing. There should have been parallel efforts to allow authors to retain copyright, implement OA through institutional repositories, and, importantly, improve self-reliance in scholarly publishing.

Given the allocation ONOS has received from the Indian government, it certainly had the potential to set a precedent for equitable and innovative publishing by addressing all the issues in parallel – yet it chose to overlook them. Without addressing these challenges, ONOS risks becoming a costly short-term fix. It is time to re-evaluate whether this initiative is a step forward or an expensive detour.

Moumita Koley is a senior research analyst at Indian Institute of Science, Bengaluru.

Is open access the future?

Scientific knowledge, as a public good, should ideally be accessible to all, especially when taxpayers fund it. Today, more than 53% of all scientific papers worldwide are open access in some way, according to data from Clarivate's Web Of Science platform.

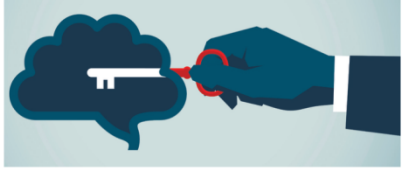

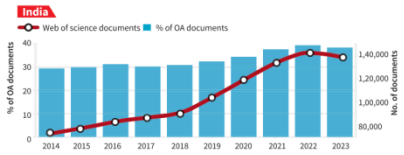

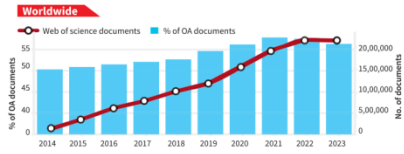

Source: Web of Science* The data only covers science, technology, engineering, and mathematics papers.

THE GIST

- In the subscription model, a journal receives manuscripts from scientists (about their studies, etc.), evaluates them through peer review, and accepts (or rejects) them. Once a paper is accepted, the journal publishes it and makes money by charging people and institutions to access it.
- Open Access (OA) refers to papers that are published to be freely accessible. There are different kinds of OA. A common type is called gold OA, where the journal makes money by charging authors an article processing charge (APC) to publish papers in the journal. The APC for a single paper has been known to be thousands of dollars. For example, *Nature Communications* charges $6,790 per paper.
- ONOS can be lauded for its ambition to democratise research access, but it should have addressed deeper structural issues plaguing scholarly publishing. There should have been parallel efforts to allow authors to retain copyright, implemented OA through institutional repositories, and, most importantly, improved self-reliance in scholarly publishing.

- यह पहल ओपन एक्सेस प्रकाशन की ओर वैश्विक बदलाव के साथ मेल खाती है, जिससे इसकी वित्तीय समझदारी और प्रासंगिकता के बारे में चिंताएँ बढ़ रही हैं।
- यह योजना मौजूदा प्रकाशन पारिस्थितिकी तंत्र में चुनौतियों को भी उजागर करती है।

ओपन एक्सेस की ओर बदलाव और ONOS की प्रासंगिकता

- वैश्विक स्तर पर, शोध पारिस्थितिकी तंत्र ओपन-एक्सेस (OA) प्रकाशन की ओर बढ़ रहा है, जो वैज्ञानिक पत्रों को स्वतंत्र रूप से उपलब्ध कराता है।
- सभी वैज्ञानिक पत्रों में से 53% से अधिक अब स्वतंत्र रूप से सुलभ हैं, जो 2018-2019 में ONOS की पहली अवधारणा के बाद से एक महत्वपूर्ण वृद्धि है।
- अमेरिका और यूरोपीय संघ जैसे देश 2026 तक सार्वजनिक रूप से वित्त पोषित शोध तक मुफ्त पहुँच को अनिवार्य कर रहे हैं, जिससे सदस्यता मॉडल पर निर्भरता कम हो रही है।
- जैसे-जैसे अधिक शोध स्वतंत्र रूप से सुलभ होते जा रहे हैं, ONOS के पुराने होने का जोखिम है।

ONOS योजना का परिचय

- केंद्रीय मंत्रिमंडल ने 25 नवंबर को 'एक राष्ट्र, एक सदस्यता' (ONOS) योजना को मंजूरी दी।ONOS का उद्देश्य भारत में सभी सार्वजनिक संस्थानों में विद्वानों की पत्रिकाओं तक सार्वभौमिक पहुँच प्रदान करना है।
- इस योजना के लिए तीन वर्षों (2025-2027) के लिए 6,000 करोड़ रुपये आवंटित किए गए हैं, जबकि वर्तमान में जर्नल सदस्यता पर लगभग 1,500 करोड़ रुपये सालाना सार्वजनिक व्यय होता है।
- इस पहल का उद्देश्य शोध लेखों तक समान पहुँच को बढ़ावा देना है, चाहे संस्थान की वित्तीय क्षमता कुछ भी हो।

मौजूदा प्रकाशन मॉडल में चुनौतियाँ

- सदस्यता-आधारित प्रकाशन प्रणाली पर कुछ पश्चिमी प्रकाशकों का दबदबा है, जो अत्यधिक शुल्क लेते हैं।
- शोधकर्ता मुख्य गतिविधियाँ करते हैं - अध्ययन और सहकर्मी समीक्षा करना - बिना किसी पारिश्रमिक के, फिर भी संस्थान प्रकाशकों को उनके काम तक पहुँचने के लिए भुगतान करते हैं।
- शोधकर्ताओं को प्रकाशकों को कॉपीराइट हस्तांतरित करना चाहिए, जिससे उनके काम का दुरुपयोग हो सकता है, जैसा कि टेलर और फ्रांसिस-माइक्रोसॉफ्ट विवाद में देखा गया था।

भारतीय विद्वानों के प्रकाशन के अवसर

- भारत में अपनी प्रतिभा और संसाधनों के कारण एक मजबूत स्वदेशी प्रकाशन पारिस्थितिकी तंत्र स्थापित करने की क्षमता है।
- भारतीय पत्रिकाओं में प्रीप्रिंटिंग, डेटा शेयरिंग और निवेश पश्चिमी प्रकाशकों पर निर्भरता कम कर सकते हैं।
- आत्मनिर्भर प्रकाशन भारत को विज्ञान और नवाचार में वैश्विक नेता के रूप में स्थापित करेगा।

ONOS में छूटे अवसर

- ONOS पहुँच पर ध्यान केंद्रित करता है, लेकिन कॉपीराइट प्रतिधारण, ग्रीन OA और प्रकाशन में आत्मनिर्भरता को मजबूत करने जैसे महत्वपूर्ण सुधारों की उपेक्षा करता है।
- इन मुद्दों को संबोधित किए बिना, ONOS एक परिवर्तनकारी समाधान के बजाय एक महंगा अस्थायी उपाय बनने का जोखिम उठाता है।

निष्कर्ष

- जबकि ONOS का ज्ञान का लोकतंत्रीकरण करने का एक प्रशंसनीय लक्ष्य है, इसके लिए विकसित हो रहे शोध परिदृश्य में दीर्घकालिक स्थिरता और प्रासंगिकता सुनिश्चित करने के लिए संरचनात्मक परिवर्तनों की आवश्यकता है।

UPSC Mains Practice Question

प्रश्न: 'एक राष्ट्र, एक सदस्यता' योजना का उद्देश्य अनुसंधान तक पहुंच को लोकतांत्रिक बनाना है, लेकिन ओपन एक्सेस प्रकाशन की ओर वैश्विक बदलाव के बीच इसकी प्रासंगिकता पर सवाल उठता है। (150 Words /10 marks)

लेख पारस्परिकता की खोज करता है, जो एक आर्थिक और सामाजिक सिद्धांत है जो निष्पक्षता और समानता को बढ़ावा देने के लिए विकेंद्रीकृत, सहकारी स्वामित्व और स्वैच्छिक आदान-प्रदान की वकालत करता है।

- यह शोषण के लिए पूंजीवाद और जबरदस्ती के लिए अधिनायकवाद की आलोचना करता है, पदानुक्रमित प्रणालियों के लिए एक क्रांतिकारी विकल्प पेश करता है।

ISTOCKPHOTO

Proudhon's theory of mutualism: a critique of capitalism and authoritarianism

Mutualism is seen as a form of libertarian socialism, balancing individual freedom with collective well-being. It offers a radical alternative to both capitalism and state socialism, promoting voluntary cooperation and mutual respect

Rebecca Rose Varghese

Mutualism is an economic and social theory that emphasises voluntary cooperation, reciprocity, and the fair exchange of goods and services. It advocates for a society where individuals and communities engage in cooperative ownership, decentralising and collectively managing productive resources like land or tools for the benefit of all. Such systems would be free from central authority and capitalist exploitation.

While property itself is not inherently exploitative in this theory, ownership of tools or land is acceptable, provided it does not lead to exploitation of others.

Unlike capitalism, which profits from labour exploitation, mutualism envisions a system where individuals and communities own resources for personal and collective benefit. It also promotes the idea of workers controlling the means of production through cooperatives or other voluntary associations, ensuring that production is driven by need, not profit. This model seeks to eliminate hierarchical power structures and promote equality and fairness in economic relations.

Origins of the theory

The term "mutualism" was coined by French philosopher Pierre-Joseph Proudhon in the mid-19th century as part of his broader critique of capitalism and authoritarianism. While Proudhon is often remembered for his declaration, "Property is theft!" in his seminal work *What is Property?* (1840), his philosophy was more complex. Mutualism was not a call for the outright abolition of property but for its reimagining into a system that serves collective well-being and fairness.

Proudhon was influenced by a secret society of weavers, known as the 'Mutualists', who he encountered during his time in Lyon in 1843. These workers advocated for worker-led cooperative production, envisioning a society where factories and resources could be run by associations of workers. They believed in transforming society through peaceful economic action rather than violent revolution, challenging the centralised political traditions of Jacobinism. Deeply inspired by their ideas, Proudhon adopted the term "mutualism" as a tribute to these working-class visionaries. His adaptation of their ideals sought to build a decentralised society where cooperation and reciprocity replaced exploitation and domination.

Mutualism and property

Proudhon's approach to property is central to mutualist philosophy. While he condemned capitalist property for enabling exploitation and monopolisation, he did not call for the complete elimination of ownership. Instead, he distinguished between "property," which allowed control over others, and "possession," where individuals could use resources for personal benefit without infringing on others' freedoms. This distinction is crucial to understanding mutualism, as it emphasises a form of ownership based on usage rather than accumulation and profit.

Mutualism rejected property rights imposed by the state that perpetuated inequality and exploitation. It advocated for a decentralised system of voluntary and equitable exchanges rooted in reciprocity. Mechanisms like worker cooperatives and shared resources were central to aligning ownership with fairness and collective well-being. By balancing individual freedom with collective solidarity, Proudhon's theory sought to challenge the entrenched hierarchies of both capitalism and the state.

Mutualism and anarchism

Rejecting state-enforced property rights, mutualism also connects closely with anarchism, particularly in the debate between individualist and social anarchism. Individual anarchists emphasise personal autonomy and freedom, focusing on the liberation of the individual from state control, while social anarchists advocate for the collective management of resources and the organisation of society to promote equality and fairness. Proudhon's work occupies a unique space between these two schools of thought.

While some early anarchists saw mutualism as a form of individualist anarchism, emphasising personal freedom and the right to possess one's tools and land, others interpreted it as a more socialist form of anarchism, in which mutual cooperation and the collective management of resources were key. The tension between these interpretations arose from Proudhon's view that the state, by its very nature, was coercive and counterproductive to the freedom of the individual. However, Proudhon was not opposed to all forms of collective organisation. He argued that a mutualist society could be organised without a state, based on cooperative principles where people freely enter into contracts and mutual exchanges, thus blending both individual freedom and collective responsibility.

The collective and the individual

The emphasis on cooperative associations, mutual credit systems, and workers' control over production demonstrates the connection between mutualism and the collective. These ideas aim to foster economic and social environments based on mutual aid and cooperation, rather than competition and exploitation. Mutualism is also inherently tied to the human need for cooperation. By organising society and the economy on the basis of shared interests and reciprocity, mutualism seeks to build a society where individuals are free to pursue their own interests while maintaining a sense of community and mutual respect.

In *General Labour History of Africa: Workers, Employers and Governments, 20th-21st Centuries*, Stefano Bellucci and Andreas Eckert discuss how traditional African societies embodied mutualistic principles. In these communities, communal land ownership and collective labour were the norms, with resources shared and production aimed at the collective good. This reflects mutualism's focus on reciprocity and equitable distribution. The chapter on African mutualism contrasts it with neoliberalism, noting that mutualism promotes shared ownership, fair compensation, and cooperation, while neoliberalism fosters inequality. It also explores the role of governments in either supporting or hindering mutualistic practices across the continent.

Mutualism was also seen as a form of libertarian socialism, balancing individual freedom with collective well-being. It offered a radical alternative to both capitalism and state socialism, promoting voluntary cooperation and mutual respect without centralised power or hierarchy.

Critiques of the theory

While mutualism holds significant revolutionary potential, it has faced critiques on several fronts. One major critique is that its reliance on small-scale property ownership may not sufficiently challenge the capitalist system's broader structural inequalities. Critics argue that mutualism fails to address the concentration of wealth and power that is intrinsic to modern capitalist economies. Furthermore, some question the feasibility of creating an egalitarian society based on voluntary cooperation, suggesting that it may be too idealistic or difficult to implement on a large scale.

Marxist critics contend that mutualism does not sufficiently address the core issues of capitalism, such as exploitation and inequality, and fails to dismantle capitalist relations of production. They argue that Proudhon's defence of small property owners and opposition to collectivism overlooks the realities of class struggle, where small producers are squeezed out by larger corporations.

Despite these criticisms, mutualism remains a radical theory that offers an alternative to both capitalist exploitation and authoritarianism. While it may not have fully resolved the challenges of inequality and exploitation, it continues to be a significant concept in the history of anarchist and socialist thought.

The writer is a freelance journalist.

पारस्परिकता का सिद्धांत

- पारस्परिकता स्वैच्छिक सहयोग, पारस्परिकता और वस्तुओं और सेवाओं के उचित आदान-प्रदान पर जोर देती है।

- यह भूमि और औजारों जैसे संसाधनों के सहकारी स्वामित्व की वकालत करता है, जिन्हें साझा लाभ के लिए सामूहिक रूप से प्रबंधित किया जाता है।
- स्वामित्व लाभ के बजाय उपयोग पर आधारित है, यह सुनिश्चित करता है कि संसाधनों का व्यक्तिगत लाभ के लिए शोषण न किया जाए।
- यह सहकारी समितियों के माध्यम से श्रमिक-नियंत्रित उत्पादन का समर्थन करता है जो बाजार लाभ के बजाय सामूहिक आवश्यकताओं के साथ उत्पादन को संरेखित करता है।
- पारस्परिकता पदानुक्रमित शक्ति संरचनाओं को अस्वीकार करती है, आर्थिक और सामाजिक संबंधों में समानता और निष्पक्षता को बढ़ावा देती है।
- यह राज्य द्वारा लगाए गए संपत्ति अधिकारों का विरोध करता है, इसके बजाय विनिमय और स्वामित्व की विकेन्द्रीकृत प्रणालियों का पक्षधर है।
- सिद्धांत "संपत्ति" के बीच अंतर करता है, जो शोषण को सक्षम बनाता है, और "कब्जा", जो वर्चस्व के बिना व्यक्तिगत उपयोग की अनुमति देता है।
- यह साझा हितों और सामुदायिक एकजुटता को बढ़ावा देता है, व्यक्तिगत स्वतंत्रता को सामूहिक कल्याण के साथ संतुलित करता है।

पूंजीवाद और अधिनायकवाद की आलोचना

- **पूंजीवाद की आलोचना**
  - o पूंजीवाद कुछ व्यक्तियों या निगमों के हाथों में धन और शक्ति को केंद्रित करके श्रम का शोषण करता है।
  - o यह सामूहिक आवश्यकताओं पर लाभ और संचय को प्राथमिकता देता है, जिससे प्रणालीगत असमानता पैदा होती है।
  - o पारस्परिकता पूंजीवाद के तहत संपत्ति के स्वामित्व के एकाधिकार को चुनौती देती है, जो शोषण को कायम रखती है।
  - o पूंजीवादी व्यवस्था की आलोचना संसाधनों और श्रमिकों पर पदानुक्रमित नियंत्रण को सक्षम करने के लिए की जाती है।
  - o पारस्परिकता पूंजीवादी मुनाफाखोरी के विकल्प के रूप में श्रमिक-नियंत्रित उत्पादन प्रणालियों की वकालत करती है।

अधिनायकवाद की आलोचना

- अधिनायकवाद राज्य द्वारा लगाए गए संपत्ति अधिकारों को लागू करता है, जो शोषण और असमानता को बनाए रखता है।
- यह सत्ता को केंद्रीकृत करता है, ऐसी प्रणालियाँ बनाता है जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए बाध्यकारी और प्रतिकूल हैं।
- पारस्परिकता स्वैच्छिक और विकेन्द्रीकृत आदान-प्रदान को बढ़ावा देती है, समानता और व्यक्तिगत स्वायत्तता सुनिश्चित करती है।
- यह पदानुक्रमित राज्य प्रणालियों में निहित वर्चस्व को अस्वीकार करता है, पारस्परिकता और पारस्परिक सहायता पर आधारित समाज का प्रस्ताव करता है।
- पारस्परिकता राज्य और पूंजीवाद दोनों के वर्चस्व से बचने के लिए सहकारी प्रणालियों को प्रोत्साहित करती है, निष्पक्षता और सामूहिक कल्याण को बढ़ावा देती है।

UPSC Prelims Practice Question

प्रश्न: वैकल्पिक आर्थिक सिद्धांत के रूप में पारस्परिकता के सिद्धांतों पर चर्चा करें। स्वामित्व और उत्पादन के लिए विकेन्द्रीकृत दृष्टिकोण का प्रस्ताव करते हुए यह पूंजीवाद और अधिनायकवाद की आलोचना कैसे करता है? (150 Words /10 marks)

Citizens with disabilities, making their rights real

Pradeep Kumar Bagival

was Disability Inclusion Adviser to the national governments, the United Nations and International Non-Governmental Organisations (INGOs) and former Assistant Commissioner for Disabilities, Persons with Disabilities Act-1995, Karnataka

The data from the 2011 national Census of India indicate that persons with disabilities constitute 2.21 % of the total population. This is a grossly underestimated figure. According to the 2019 Brief Disability Model Survey conducted by the World Health Organization across India, Tajikistan and the Lao People's Democratic Republic, the prevalence of severe disability among Indian adults is 16%. India ratified the United Nations Convention on the Rights of Persons with Disabilities on October 1, 2007 and one of the immediate measures expected out of the state parties to the convention is to ensure alignment of the national disability legislations in line with the principles of the convention. Accordingly, Parliament passed the Rights of Persons with Disabilities Act 2016 (RPWD Act) that came into force on April 19, 2017 to replace the earlier Persons with Disabilities (Equal Opportunities, Protection of Rights and Full Participation) Act, 1995, which fell short of promoting a social and a human rights model of disability rights.

The role of the State Commissioner

One of the unique points of the RPWD Act in comparison to many disability legislations of the developing countries is the provision for the constitution of the office of the State Commissioners for Disabilities at the State level with a combination of review, monitoring, and quasi-judicial functions to ensure effective implementation of the disability law. According to Section 82 of the RPWD Act, the State Commissioners, for the purpose of discharging their functions under the Act, shall have the same powers of a civil court under the Civil Procedure Code 1908 while trying a suit, and every proceeding before the State Commissioner shall be a judicial proceeding within the meaning of Sections 193 and 228 of the Indian Penal Code (45 of 1860).

Despite the legislation providing far-reaching quasi-judicial powers to the State Commissioners in safeguarding the rights and fundamental freedoms of persons with disabilities, the State Commissioners in many States have fallen short of the expectations of citizens with disabilities. This dismal functioning of the office of the State Commissioners is largely due to the lax attitude on the part of the State governments to invigorate the statutory office in discharging its functions in accordance with the law. This reality has been aptly highlighted in the writ petition WPC 29329/2021, *Seema Girija Lal vs. Union of India,* in which the delay in appointment of the state Commissioners has also been highlighted.

Among various reasons for the failure to fulfil the statutory role by the State Commissioners is the manner in which the commissioners are appointed. The RPWD Rules provide an opportunity for persons with substantial experience in law, human rights, education, social work and rehabilitation and with a non-governmental organisation background to be appointed to the position of State Commissioner. In reality, a majority of the commissioners, either independent or holding additional charge, are civil servants from the nodal ministry. According to the latest report (2021-22) of the Chief Commissioner for Persons with Disabilities, only eight States have appointed commissioners who are not part of the mainstream civil service. Having civil servants from the nodal ministry is in conflict with the purpose of having an impartial and independent office that can exercise oversight over the executive and hold them accountable for not implementing the provisions of the disability law.

> State Commissioners have a vital role in safeguarding the rights and fundamental freedoms of persons with disabilities, but in many States, their statutory role has fallen short of expectations

Some of the progressive States in terms of disability inclusion have appointed representatives of civil society organisations as State Commissioners and the State governments should consider appointing qualified women with disabilities as commissioners as they will be in a better position to address intersectional forms of discrimination that women and girls with disabilities in India currently experience.

The State Commissioners have a substantive role including powers to intervene *suo motu* to identify and inquire about any specific policy, provision, programme and laws that contravene the provisions of the RPWD Act and recommend appropriate corrective measures.

There are many contraventions of the RPWD Act that are highlighted by aggrieved persons with disabilities and by certain proactive organisations of persons with disabilities (OPDs) and the State Commissioners have not been able to intervene *suo motu* to address discriminatory policies and practices which has led to an erosion of faith in the statutory offices created under the disability law to uphold the rights of citizens with disabilities. The State Commissioners should interact consistently with persons with disabilities and their representative organisations to understand which are those policies, guidelines, executive orders that contravene the provisions of the law and initiate necessary remedial action.

The example of Karnataka

It is vital for State governments and the office of the Chief Commissioner for Disabilities to build the capacity of the State Commissioners in performing their quasi-judicial role and in functioning as a civil court. As done by the State Commissioner's office in Karnataka, collaborating with law schools and legal experts in strengthening their respective capacities could be a viable option. While some States such as Karnataka and Delhi have been able to infuse confidence among persons with disabilities to register complaints with regard to a deprivation of their rights, it is equally important for State Commissioners to look into complaints and dispose of them expeditiously. The websites of the office of the State Commissioners should – on the dashboard – indicate the number of cases received, disposed of and those pending for action along with other vital information such as annual reports and special reports submitted to the government on implementation of the law by the government with concrete recommendations.

For an inclusive future

Mobile adalats (mobile courts), as practised years ago by the Karnataka Commissioner's office, could be a good practice for other States to emulate in reaching out to persons with disabilities in remote areas and to look into a deprivation of their rights. Adalats were organised in the State with prior notice to persons with disabilities through the nodal disability office in the districts for aggrieved individuals or institutions to get their grievance redress.

Often, these grievances would be resolved on the spot for persons with disabilities and their families. Designating District Magistrates as Deputy Commissioners for persons with disabilities – as done in the case of Karnataka – is a promising way to make local governance disability inclusive.

The RPWD Act enables State Commissioners to monitor the implementation of various pieces of legislation, programmes and schemes that impact persons with disabilities. To maximise the effectiveness of this critical role, the District Disability Management Review (DDMR) undertaken by the Karnataka State Commissioner's office could be one of the preferred practices for State Commissioners. The DDMR has become an inclusive governance tool for the State Commissioner in Karnataka to have sight of how development and welfare programmes and policies have been implemented by the relevant departments at the district level, and to what extent the quotas earmarked for persons with disabilities have been fulfilled.

Research as a function

One of the key functions of the State Commissioners is to undertake and promote research in the field of disability rights. This opens up opportunities for the State Commissioners to collaborate with United Nations entities which have a mandate to promote disability inclusion on the basis of the UN Disability Inclusion Strategy in undertaking research in areas such as disability inclusive social protection, disability inclusive care economy and the impact of climate change on persons with disabilities. The findings could pave the way for more inclusive policies and in advancing the rights of persons with disabilities in India.

GS Paper 02 : सामाजिक न्याय – कमज़ोर वर्ग

UPSC Mains Practice Question: भारत में विकलांगता अधिकारों को सुनिश्चित करने में विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम, 2016 के तहत राज्य आयुक्तों की भूमिका की आलोचनात्मक जांच करें। चुनौतियों पर प्रकाश डालें और उनकी प्रभावशीलता को मजबूत करने के उपाय सुझाएँ। (250 Words /15 marks)

संदर्भ :

- दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम, 2016 का उद्देश्य भारत में विकलांगता समावेशन के लिए मानवाधिकार-आधारित दृष्टिकोण को बढ़ावा देना है।
- अर्ध-न्यायिक राज्य आयुक्तों जैसे प्रगतिशील प्रावधानों के बावजूद, देरी से नियुक्तियों और स्वतंत्र निगरानी की कमी के कारण कार्यान्वयन में अंतराल बना हुआ है।
- कर्नाटक जैसे राज्य विकलांगता-समावेशी शासन सुनिश्चित करने के लिए प्रभावी प्रथाओं का प्रदर्शन करते हैं।

परिचय

- भारत की 2011 की राष्ट्रीय जनगणना के आंकड़ों से संकेत मिलता है कि विकलांग व्यक्ति कुल आबादी का 2.21% हैं। यह एक बहुत ही कम आंका गया आंकड़ा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा भारत, ताजिकिस्तान और लाओ पीपुल्स डेमोक्रेटिक रिपब्लिक में किए गए 2019 के संक्षिप्त विकलांगता मॉडल सर्वेक्षण के अनुसार, भारतीय वयस्कों में गंभीर विकलांगता का प्रचलन 16% है।
- भारत ने 1 अक्टूबर, 2007 को विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन की पुष्टि की और सम्मेलन के राज्य पक्षों से अपेक्षित तत्काल उपायों में से एक सम्मेलन के सिद्धांतों के अनुरूप राष्ट्रीय विकलांगता विधानों का संरेखण सुनिश्चित करना है।
- संसद ने विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम 2016 (आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम) पारित किया, जो 19 अप्रैल, 2017 को लागू हुआ, तथा पहले के विकलांग व्यक्तियों (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 को प्रतिस्थापित किया, जो विकलांगता अधिकारों के सामाजिक और मानवाधिकार मॉडल को बढ़ावा देने में विफल रहा।

राज्य आयुक्त की भूमिका

- आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम की अनूठी विशेषताएँ: विकासशील देशों के कई विकलांगता कानूनों की तुलना में आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम की एक अनूठी विशेषता यह है कि विकलांगता कानून के प्रभावी कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए समीक्षा, निगरानी और अर्ध-न्यायिक कार्यों के संयोजन के साथ राज्य स्तर पर विकलांगों के लिए राज्य आयुक्तों के कार्यालय के गठन का प्रावधान है।
- आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम की धारा 82 के अनुसार, अधिनियम के तहत अपने कार्यों का निर्वहन करने के उद्देश्य से, राज्य आयुक्तों को मुकदमे की सुनवाई करते समय सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के तहत सिविल न्यायालय की समान शक्तियाँ प्राप्त होंगी, और राज्य आयुक्त के समक्ष प्रत्येक कार्यवाही भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 193 और 228 के अर्थ में न्यायिक कार्यवाही होगी।

राज्य आयुक्तों के कामकाज में चुनौतियाँ

- विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों और मौलिक स्वतंत्रता की रक्षा करने में राज्य आयुक्तों को दूरगामी अर्ध-न्यायिक शक्तियाँ प्रदान करने वाले कानून के बावजूद, कई राज्यों में राज्य आयुक्त विकलांग नागरिकों की अपेक्षाओं पर खरे नहीं उतरे हैं।
- राज्य आयुक्तों के कार्यालय का यह निराशाजनक कामकाज काफी हद तक राज्य सरकारों की ओर से वैधानिक कार्यालय को कानून के अनुसार अपने कार्यों का निर्वहन करने में सक्रिय करने के लिए ढीले रवैये के कारण है।
- इस वास्तविकता को रिट याचिका WPC 29329/2021, सीमा गिरिजा लाल बनाम भारत संघ में सटीक रूप से उजागर किया गया है, जिसमें राज्य आयुक्तों की नियुक्ति में देरी को भी उजागर किया गया है।

वैधानिक भूमिका को पूरा करने में विफलता के कारण

- राज्य आयुक्तों द्वारा वैधानिक भूमिका को पूरा करने में विफलता के विभिन्न कारणों में से एक है जिस तरह से आयुक्तों की नियुक्ति की जाती है।
- RPWD नियम कानून, मानवाधिकार, शिक्षा, सामाजिक कार्य और पुनर्वास में पर्याप्त अनुभव रखने वाले और गैर-सरकारी संगठन की पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों को राज्य आयुक्त के पद पर नियुक्त होने का अवसर प्रदान करते हैं।
- वास्तव में, अधिकांश आयुक्त, चाहे स्वतंत्र हों या अतिरिक्त प्रभार संभाल रहे हों, नोडल मंत्रालय के सिविल सेवक हैं।
- दिव्यांग व्यक्तियों के लिए मुख्य आयुक्त की नवीनतम रिपोर्ट (2021-22) के अनुसार, केवल आठ राज्यों ने ऐसे आयुक्तों की नियुक्ति की है जो मुख्यधारा की सिविल सेवा का हिस्सा नहीं हैं।
- नोडल मंत्रालय से सिविल सेवकों को नियुक्त करना एक निष्पक्ष और स्वतंत्र कार्यालय के उद्देश्य के साथ टकराव में है, जो कार्यकारी पर निगरानी रख सकता है और विकलांगता कानून के प्रावधानों को लागू न करने के लिए उन्हें जवाबदेह ठहरा सकता है।

बेहतर नियुक्तियों के लिए सिफारिशें

- विकलांगता समावेशन के मामले में कुछ प्रगतिशील राज्यों ने नागरिक समाज संगठनों के प्रतिनिधियों को राज्य आयुक्तों के रूप में नियुक्त किया है।
- राज्य सरकारों को योग्य विकलांग महिलाओं को आयुक्तों के रूप में नियुक्त करने पर विचार करना चाहिए क्योंकि वे भारत में विकलांग महिलाओं और लड़कियों द्वारा वर्तमान में अनुभव किए जाने वाले भेदभाव के अंतर्विरोधी रूपों को संबोधित करने की बेहतर स्थिति में होंगी।
- राज्य आयुक्तों की भूमिका: राज्य आयुक्तों की एक महत्वपूर्ण भूमिका है, जिसमें आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन करने वाली किसी भी विशिष्ट नीति, प्रावधान, कार्यक्रम और कानूनों की पहचान करने और उनके बारे में पूछताछ करने और उचित सुधारात्मक उपायों की सिफारिश करने के लिए स्वप्रेरणा से हस्तक्षेप करने की शक्तियाँ शामिल हैं।
- वर्तमान प्रथाओं से संबंधित मुद्दे: विकलांग व्यक्तियों के पीड़ित व्यक्तियों और विकलांग व्यक्तियों के कुछ सक्रिय संगठनों (ओपीडी) द्वारा आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम के कई उल्लंघनों को उजागर किया गया है।
- राज्य आयुक्त भेदभावपूर्ण नीतियों और प्रथाओं को संबोधित करने के लिए स्वप्रेरणा से हस्तक्षेप करने में सक्षम नहीं हैं, जिसके कारण विकलांग नागरिकों के अधिकारों को बनाए रखने के लिए विकलांगता कानून के तहत बनाए गए वैधानिक कार्यालयों में विश्वास का क्षरण हुआ है।
- हितधारक जुड़ाव की आवश्यकता: राज्य आयुक्तों को विकलांग व्यक्तियों और उनके प्रतिनिधि संगठनों के साथ लगातार बातचीत करनी चाहिए ताकि यह समझा जा सके कि वे कौन सी नीतियां, दिशानिर्देश, कार्यकारी आदेश हैं जो कानून के प्रावधानों का उल्लंघन करते हैं और आवश्यक उपचारात्मक कार्रवाई शुरू करते हैं।

कर्नाटक का उदाहरण

- राज्य आयुक्तों के लिए क्षमता निर्माण: राज्य सरकारों और मुख्य विकलांग आयुक्त के कार्यालय के लिए यह महत्वपूर्ण है कि वे राज्य आयुक्तों की अर्ध-न्यायिक भूमिका निभाने और एक सिविल कोर्ट के रूप में कार्य करने की क्षमता का निर्माण करें।
  - o जैसा कि कर्नाटक में राज्य आयुक्त कार्यालय ने किया है, विधि विद्यालयों और कानूनी विशेषज्ञों के साथ मिलकर उनकी संबंधित क्षमताओं को मजबूत करना एक व्यवहार्य विकल्प हो सकता है।
- शिकायत प्रबंधन और निपटान: जबकि कर्नाटक और दिल्ली जैसे कुछ राज्य विकलांग व्यक्तियों के बीच उनके अधिकारों के हनन के संबंध में शिकायत दर्ज करने के लिए आत्मविश्वास पैदा करने में सक्षम रहे हैं, राज्य आयुक्तों के लिए शिकायतों पर गौर करना और उनका शीघ्रता से निपटान करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है।
  - o राज्य आयुक्तों के कार्यालय की वेबसाइटों पर - डैशबोर्ड पर - प्राप्त, निपटाए गए और कार्रवाई के लिए लंबित मामलों की संख्या के साथ-साथ अन्य महत्वपूर्ण जानकारी जैसे कि सरकार द्वारा कानून के कार्यान्वयन पर ठोस सिफारिशों के साथ सरकार को प्रस्तुत वार्षिक रिपोर्ट और विशेष रिपोर्ट दर्शाई जानी चाहिए।
- दूरदराज के क्षेत्रों तक पहुँचने के लिए मोबाइल अदालतें: मोबाइल अदालतें (मोबाइल कोर्ट), जैसा कि कर्नाटक आयुक्त कार्यालय द्वारा वर्षों पहले अभ्यास किया गया था, अन्य राज्यों के लिए दूरदराज के क्षेत्रों में विकलांग व्यक्तियों तक पहुँचने और उनके अधिकारों के हनन की जाँच करने के लिए एक अच्छा अभ्यास हो सकता है।
  - o पीड़ित व्यक्तियों या संस्थाओं को उनकी शिकायतों का निवारण करवाने के लिए जिलों में नोडल विकलांगता कार्यालय के माध्यम से विकलांग व्यक्तियों को पूर्व सूचना देने के साथ राज्य में अदालतें आयोजित की गईं।
  - o अक्सर, विकलांग व्यक्तियों और उनके परिवारों के लिए इन शिकायतों का मौके पर ही समाधान किया जाता था।
- विकलांगता समावेशन के लिए जिला मजिस्ट्रेटों को नामित करना: विकलांग व्यक्तियों के लिए उपायुक्त के रूप में - जैसा कि कर्नाटक के मामले में किया गया है - स्थानीय शासन को विकलांगों के लिए समावेशी बनाने का एक आशाजनक तरीका है।

कानून के कार्यान्वयन की निगरानी

- आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम राज्य आयुक्तों को विकलांग व्यक्तियों को प्रभावित करने वाले विभिन्न कानूनों, कार्यक्रमों और योजनाओं के कार्यान्वयन की निगरानी करने में सक्षम बनाता है।
- इस महत्वपूर्ण भूमिका की प्रभावशीलता को अधिकतम करने के लिए, कर्नाटक राज्य आयुक्त कार्यालय द्वारा की जाने वाली जिला विकलांगता प्रबंधन समीक्षा (डीडीएमआर) राज्य आयुक्तों के लिए पसंदीदा प्रथाओं में से एक हो सकती है।
- डीडीएमआर कर्नाटक में राज्य आयुक्त के लिए एक समावेशी शासन उपकरण बन गया है, जिससे यह पता चलता है कि जिला स्तर पर संबंधित विभागों द्वारा विकास और कल्याण कार्यक्रमों और नीतियों को कैसे लागू किया गया है, और विकलांग व्यक्तियों के लिए निर्धारित कोटा किस हद तक पूरा किया गया है।

निष्कर्ष: एक कार्य के रूप में अनुसंधान

- राज्य आयुक्तों के प्रमुख कार्यों में से एक विकलांगता अधिकारों के क्षेत्र में अनुसंधान करना और उसे बढ़ावा देना है।
- इससे राज्य आयुक्तों के लिए संयुक्त राष्ट्र संस्थाओं के साथ सहयोग करने के अवसर खुलते हैं, जिनके पास विकलांगता समावेशी सामाजिक सुरक्षा, विकलांगता समावेशी देखभाल अर्थव्यवस्था और विकलांग व्यक्तियों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव जैसे क्षेत्रों में अनुसंधान करने के लिए संयुक्त राष्ट्र विकलांगता समावेशन रणनीति के आधार पर विकलांगता समावेशन को बढ़ावा देने का अधिदेश है।
- इन निष्कर्षों से भारत में अधिक समावेशी नीतियों और विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों को आगे बढ़ाने का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।